



अध्याय 12: भक्तियोग

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: 12.1

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते |

ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः || 1 ||

हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—जो निरंतर आपके भजन-ध्यान में लगे रहकर आप सगुण रूप (साकार) की उपासना करते हैं और जो अविनाशी निराकार (अव्यक्त) की उपासना करते हैं, उन दोनों प्रकार के योगियों में श्रेष्ठ कौन है?

सरल व्याख्या:

अर्जुन यहाँ साकार (मूर्ति या रूप) और निराकार (बिना रूप) की पूजा के बीच का अंतर और श्रेष्ठता पूछ रहे हैं, जो हर साधक के मन में उठने वाला प्रश्न है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... साधना के विभिन्न मार्गों के प्रति जिज्ञासा और सही मार्ग का चयन ही शिष्य की उन्नति का आधार है।

श्लोक संख्या: 12.2

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते |

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः || 2 ||

हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—मुझमें मन को एकाग्र करके जो भक्त निरंतर मेरे भजन-ध्यान में लगे रहते हैं और परम श्रद्धा से युक्त होकर मेरी उपासना करते हैं, वे मेरे मत में सर्वश्रेष्ठ योगी हैं।

सरल व्याख्या:

भगवान् ने स्पष्ट किया कि साकार रूप में मन लगाना आसान है और जो अटूट श्रद्धा से ऐसा करते हैं, वे योग में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन की एकाग्रता और तीव्र श्रद्धा ही भक्ति की सफलता का मुख्य मापदंड है।

श्लोक संख्या: 12.3

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते |

सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् || 3 ||

हिन्दी अनुवाद:

किंतु जो लोग इंद्रियों को वश में करके उस अनिर्देश्य (जिसे बताया न जा सके), अव्यक्त (निराकार), सर्वव्यापी, अचिन्त्य (सोच से परे), कूटस्थ (अविनाशी), अचल और ध्रुव (नित्य) अक्षर ब्रह्म की उपासना करते हैं...

सरल व्याख्या:

भगवान् निराकार उपासना की गंभीरता को बता रहे हैं। वे कहते हैं कि निराकार की साधना करने वाले भी सत्य के खोजी हैं, पर इसके लिए इंद्रियों पर कठोर नियंत्रण चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निराकार ब्रह्म की साधना बुद्धि और इंद्रियों के पूर्ण निग्रह की अपेक्षा रखती है, जो अत्यंत सूक्ष्म मार्ग है।

श्लोक संख्या: 12.04

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः |

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः || 4 ||

हिन्दी अनुवाद:

अपनी समस्त इंद्रियों को अच्छी तरह वश में करके, सभी परिस्थितियों में समान बुद्धि वाले और समस्त प्राणियों के कल्याण में लगे हुए लोग भी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

सरल व्याख्या:

जो साधक अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखते हैं, सुख और दुःख में विचलित नहीं होते और जिनका हृदय हर छोटे-बड़े जीव के भले के लिए काम करता है, वे निराकार (बिना रूप वाले) ब्रह्म की साधना के माध्यम से भी अंततः मुझ परमेश्वर को ही प्राप्त करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... इंद्रिय संयम, मानसिक समता और प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखना ही आध्यात्मिक उन्नति की पहली और अनिवार्य शर्त है।

श्लोक संख्या: 12.05

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ 5 ॥

हिन्दी अनुवाद:

उन निराकार (अव्यक्त) ब्रह्म में आसक्त चित्त वाले मनुष्यों के मार्ग में कष्ट अधिक हैं, क्योंकि देहधारियों (शरीर अभिमानी मनुष्यों) के लिए अव्यक्त की राह बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है।

सरल व्याख्या:

चूँकि हम स्वयं एक शरीर धारण किए हुए हैं, इसलिए हमारा मन किसी रूप, रंग या नाम की ओर जल्दी आकर्षित होता है। बिना किसी आधार या बिना किसी आकार के ईश्वर पर मन को टिकाना बहुत कठिन और मानसिक रूप से थका देने वाला होता है, इसलिए साधारण मनुष्यों के लिए साकार भक्ति का मार्ग अधिक सुगम है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निराकार की साधना भी सत्य है, परंतु एक साधारण मनुष्य के लिए साकार (सगुण) भक्ति का मार्ग व्यावहारिक रूप से कम संघर्षपूर्ण और सहज होता है।

श्लोक संख्या: 12.06-07

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः ।

अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ 6 ॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।

भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ 7 ॥

हिन्दी अनुवाद:

परन्तु जो अपने समस्त कर्मों को मुझमें अर्पण करके, मेरे परायण होकर, अनन्य योग से मेरा ही ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं—हे पार्थ! मुझमें चित्त लगाने वाले उन भक्तों का मैं मृत्यु रूप संसार-सागर से शीघ्र ही उद्धार करने वाला बन जाता हूँ।

सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ एक बहुत बड़ा आश्वासन देते हैं। वे कहते हैं कि जो लोग अपने जीवन के हर काम को मेरी सेवा समझकर मुझे समर्पित कर देते हैं और केवल मेरा ही आश्रय लेते हैं, उनके जीवन की नैया को इस जन्म-मृत्यु के चक्र से पार लगाने की जिम्मेदारी स्वयं मेरी हो जाती है। मैं उन्हें बहुत जल्दी इस भवसागर से निकाल लेता हूँ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब भक्त अपने कर्म और मन पूरी तरह ईश्वर को सौंप देता है, तो परमात्मा स्वयं आगे बढ़कर उसकी रक्षा और मुक्ति का दायित्व संभाल लेते हैं।

श्लोक संख्या: 12.08

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ 8 ॥

हिन्दी अनुवाद:

तू मुझमें ही अपने मन को लगा और मुझमें ही अपनी बुद्धि को स्थिर कर; इसके बाद तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

सरल व्याख्या:

भगवान अर्जुन से कहते हैं कि अपनी भावनाओं (मन) को मुझसे जोड़ो और अपने विचारों व निर्णयों (बुद्धि) को मुझ पर एकाग्र करो। जब तुम्हारी चेतना के ये दोनों स्तर मुझसे युक्त हो जाएंगे, तो तुम इस भौतिक संसार में रहते हुए भी आत्मिक रूप से सदैव मेरे दिव्य स्वरूप में ही निवास करोगे।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन और बुद्धि का ईश्वर की इच्छा और स्वरूप में पूरी तरह एकाकार हो जाना ही वास्तविक योग की पराकाष्ठा है।

श्लोक संख्या: 12.09

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥ 9 ॥

हिन्दी अनुवाद:

हे धनंजय! यदि तू मन को मुझमें अचल भाव से स्थिर करने में समर्थ नहीं है, तो 'अभ्यास योग' (बार-बार किए जाने वाले प्रयास) के द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा कर।

सरल व्याख्या:

भगवान मानव स्वभाव को भली-भाँति जानते हैं कि मन चंचल है और तुरंत एकाग्र नहीं होता। इसलिए वे एक विकल्प देते हैं: यदि एक बार में मन न लगे, तो निराश मत हो। जब-जब मन भटक कर बाहर जाए, उसे खींचकर वापस लाओ। इस 'अभ्यास' से धीरे-धीरे मन स्थिर होने लगेगा।

यह श्लोक हमें बताता है कि... चंचल मन को वश में करने का एकमात्र व्यावहारिक साधन निरंतर और धैर्यपूर्वक किया जाने वाला 'अभ्यास' ही है।

श्लोक संख्या: 12.10

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव |
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि || 10 ||

हिन्दी अनुवाद:

यदि तू इस अभ्यास में भी असमर्थ है, तो मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो जा। मेरे निमित्त (मेरी प्रसन्नता के लिए) कर्मों को करता हुआ भी तू परम गति को प्राप्त करेगा।

सरल व्याख्या:

यदि आपकी जीवनशैली ऐसी है कि आप एकांत में बैठकर अभ्यास या ध्यान नहीं कर सकते, तो भगवान कहते हैं कि तुम समाज में रहकर जो भी कर्तव्य कर्म कर रहे हो—चाहे वह घर का काम हो या व्यवसाय—उसे यह सोचकर करो कि "यह कार्य मैं ईश्वर की प्रसन्नता के लिए कर रहा हूँ।" इस सेवा भाव से किए गए कर्म भी तुम्हें पवित्र कर देंगे।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने दैनिक कर्तव्यों को ईश्वर की पूजा या सेवा मानकर करना भी साधक को सर्वोच्च आध्यात्मिक सिद्धि तक पहुँचा देता है।

श्लोक संख्या: 12.11

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः |
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् || 11 ||

हिन्दी अनुवाद:

यदि तू इसे करने में भी असमर्थ है, तो मेरे योग के आश्रित होकर, मन और बुद्धि को वश में कर और सब कर्मों के फलों का त्याग कर।

सरल व्याख्या:

भगवान करुणावश मार्ग को और सरल करते हैं। वे कहते हैं कि यदि तुम्हारे भीतर अभी इतना समर्पण नहीं आया कि हर काम को मेरा काम समझ सको, तो कम से कम इतना करो कि जो भी काम करो, उसके 'परिणाम' (नतीजे) से मत जुड़ो। सफलता मिले या विफलता, उसे सहजता से स्वीकार करो और फल की चिंता छोड़ दो।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म के परिणामों के प्रति अपनी अत्यधिक आसक्ति या चिंता को छोड़ देना ही मानसिक तनाव से मुक्ति और शांति का मूल मंत्र है।

श्लोक संख्या: 12.12

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते |
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् || 12 ||

हिन्दी अनुवाद:

बिना समझ के किए जाने वाले अभ्यास से 'ज्ञान' श्रेष्ठ है; ज्ञान से 'ध्यान' श्रेष्ठ है और ध्यान से भी 'कर्मफल का त्याग' श्रेष्ठ है, क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शांति प्राप्त होती है।

सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ एक सीढ़ी बताते हैं: लकीर के फ़कीर बनकर अभ्यास करने से बेहतर है कि बात को समझा जाए (ज्ञान)। ज्ञान से गहरा है उस पर मनन करना (ध्यान)। लेकिन इन सबसे भी व्यावहारिक और तुरंत फल देने वाला है 'कर्मफल का त्याग'। जैसे ही मनुष्य भविष्य की चिंताओं और इच्छाओं का बोझ पटक देता है, उसका मन उसी क्षण शांत हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समस्त साधनाओं का व्यावहारिक निचोड़ इच्छाओं और फलों के प्रति मोह को छोड़ना है, क्योंकि असली शांति त्याग के तुरंत बाद मिलती है।

श्लोक संख्या: 12.13

अद्वेषा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च |
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी || 13 ||

हिन्दी अनुवाद:

जो किसी भी प्राणी से द्वेष नहीं करता, जो सबका मित्र है और दयालु है, जो ममता (मेरा-तेरा) और अहंकार (मैं-पन) से रहित है, सुख-दुःख में समान रहने वाला और क्षमावान है...

सरल व्याख्या:

यहाँ से भगवान अपने 'प्रिय भक्त' के आंतरिक गुणों का चित्र खींचते हैं। सच्चा भक्त वह नहीं है जो केवल मंदिर में बैठता है, बल्कि वह है जिसके मन में किसी के लिए नफरत नहीं होती। वह बिना किसी स्वार्थ के सबका मित्र बनता है, कमज़ोरों पर दया करता है, घमंड और स्वामित्व की भावना से दूर रहता है और विपरीत परिस्थितियों में भी शांत रहकर दूसरों को माफ कर देता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर का प्रिय बनने के लिए केवल धार्मिक क्रियाएँ काफी नहीं हैं, बल्कि चरित्र में करुणा, निरहंकारिता और क्षमाशीलता जैसे मानवीय गुणों का उतरना आवश्यक है।

श्लोक संख्या: 12.14

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ 14 ॥

हिन्दी अनुवाद:

जो निरंतर संतुष्ट है, मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किए हुए है, दृढ़ निश्चय वाला है और मुझमें अर्पण किए हुए मन-बुद्धि वाला है—वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि मेरा वह भक्त मुझे बहुत प्यारा है जो हर हाल में खुश रहता है। उसे संसार से कोई शिकायत नहीं होती। उसका अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण होता है, उसका संकल्प पक्का होता है और वह अपनी हर सोच और निर्णय को मुझे समर्पित करके जीता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आंतरिक संतोष, अडिग संकल्प और अपनी बुद्धि को ईश्वर के चरणों में सौंप देना ही एक सच्चे भक्त की असली पहचान है।

श्लोक संख्या: 12.15

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ 15 ॥

हिन्दी अनुवाद:

जिससे कोई भी जीव उद्वेग (दुःख या अशांति) को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष (ईर्ष्या), भय और उद्वेगों से मुक्त है—वह मुझे प्रिय है।

सरल व्याख्या:

सच्चा भक्त वह है जिसके व्यवहार से संसार के किसी प्राणी को दुःख या डर नहीं पहुँचता, और न ही वह दूसरों के गलत व्यवहार से खुद परेशान होता है। वह बहुत अधिक खुश होने (अहंकार), दूसरों की तरक्की देखकर जलने, किसी बात से डरने या मानसिक रूप से बेचैन होने की आदतों से ऊपर उठ चुका होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मिक शांति और दूसरों के लिए हानिरहित होना ही भक्ति का व्यावहारिक रूप है; भक्त न तो किसी को सताता है और न ही किसी से त्रस्त होता है।

श्लोक संख्या: 12.16

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ 16 ॥

हिन्दी अनुवादः

जो आकांक्षा से रहित, बाहर-भीतर से शुद्ध, चतुर (कर्तव्य पालन में कुशल), पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है तथा सब प्रकार के स्वार्थपूर्ण प्रयत्नों का त्यागी है—वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

सरल व्याख्या:

भगवान को वह भक्त प्रिय है जो किसी से कोई उम्मीद नहीं रखता, जिसका तन और मन साफ है, जो अपने काम को पूरी कुशलता से करता है पर किसी गुटबाज़ी या पक्षपात में नहीं पड़ता। उसे भूतकाल का कोई पछतावा या दुःख नहीं सताता और वह केवल अपने फायदे के लिए नए-नए प्रपंच (स्वार्थपूर्ण कार्य) नहीं रचता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्पक्षता, आंतरिक व बाहरी पवित्रता और व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए किए जाने वाले कार्यों का त्याग ही मनुष्य को ईश्वर के निकट लाता है।

श्लोक संख्या: 12.17

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ 17 ॥

हिन्दी अनुवादः

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मफलों का त्यागी है—वह भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है।

सरल व्याख्या:

सच्चा साधक अनुकूल समय में बहुत नाचता नहीं और प्रतिकूल समय में किसी से नफरत नहीं करता। कुछ खो जाने पर वह विलाप नहीं करता और भविष्य के लिए नई इच्छाएं नहीं पालता। वह अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्मों के फलों को ईश्वर का विधान मानकर समभाव से स्वीकार कर लेता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक समता की वह अवस्था जहाँ अनुकूलता और प्रतिकूलता मन को विचलित न कर सकें, वही वास्तविक भक्ति का लक्षण है।

श्लोक संख्या: 12.18-19

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः |

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः || 18 ||

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् |

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः || 19 ||

हिन्दी अनुवाद:

जो शत्रु और मित्र में तथा मान और अपमान में सम है; सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति से रहित है; जो निन्दा और स्तुति को समान समझने वाला, मननशील (मौन रहने वाला), जिस किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने पर संतुष्ट रहने वाला, रहने के स्थान में ममता से रहित और स्थिर बुद्धि वाला है—वह भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है।

सरल व्याख्या:

भगवान् अपने प्रिय भक्त की परिभाषा को समेटते हुए कहते हैं कि उसे चाहे कोई अपना समझे या पराया, चाहे कोई उसकी तारीफ करे या बुराई, चाहे समाज उसे सम्मान दे या अपमान—उसका मन हमेशा शांत रहता है। वह मौसम की मार (सर्दी-गर्मी) और जीवन के उतार-चढ़ाव (सुख-दुःख) को सहज लेता है। वह व्यर्थ की बातें करने के बजाय अंतर्मुखी (मौन) रहता है, जो मिल जाए उसी में खुश रहता है और मकान या संपत्ति में 'यह मेरा है' जैसी ममता नहीं रखता। उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार के सभी द्वन्द्वों (जैसे मान-अपमान, लाभ-हानि) से ऊपर उठकर अपनी बुद्धि को आत्मा में स्थिर कर लेना ही भक्त को परमात्मा का अत्यंत प्रिय पात्र बना देता है।

श्लोक संख्या: 12.20

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते |

श्रद्धधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः || 20 ||

हिन्दी अनुवाद:

परन्तु जो श्रद्धालु पुरुष मेरे परायण होकर, इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को (सद्गुणों की शिक्षा को) निष्काम भाव से श्रवण और आचरण करते हैं, वे भक्त मुझे अत्यधिक प्रिय हैं।

सरल व्याख्या:

यह इस अध्याय का अंतिम श्लोक है। भगवान कहते हैं कि मैंने इस अध्याय में जो भी बातें (श्लोक 13 से 19 तक) बताई हैं, वे केवल सुनने के लिए नहीं बल्कि 'धर्म रूपी अमृत' हैं। जो मनुष्य पूरी श्रद्धा के साथ इन गुणों को अपने जीवन में उतारता है और मुझे ही अपना परम लक्ष्य मानता है, वह भक्त मुझे सबसे ज्यादा, बेहद प्रिय है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की शिक्षाओं को केवल जानना काफी नहीं है, बल्कि उन दिव्य गुणों को अपने आचरण और चरित्र में जीना ही भक्ति की पूर्णता है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram